श्री गुरुवे नमः

बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविन्द दियो मिलाय

मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा कितनी ही विशेषतायें है, वहीं अनेक कमजोरियां भी है। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि, जहाँ पशु–पक्षी के बच्चे बिना सिखाये अपनी दिनचर्या की साधारण बातों को सीख लेते हैं, वहीं मनुष्य का बालक सिखाये बिना मनुष्यत्व प्राप्त नहीं कर सकता।

हमारे ऋषियों ने इस भारी कठिनाई को देखकर एक महत्वपूर्ण व सुन्दर उपाय निश्चित किया कि, बालक पर माँ–बाप के अतिरिक्त किसी ऐसे व्यक्ति का नियंत्रण रहना चाहिये जो मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं को जानता हो। दूरदर्शी, तत्वज्ञानी व पारदर्शी हो।

शास्त्रों में तीन प्रत्यक्ष देव कहे गये है, माता–पिता और गुरु। इन्हें ब्रम्ह्म–विष्णु व महेश की उपाधि दी गई है। माता जन्म देती है, अतः ब्रम्ह्म है। पिता पोषण करता है, इसलिये विष्णु है और गुरु महेश बनकर कुसंस्कारों का संहार करता है।

बगीचे को यदि सुन्दर बनाना है, तो किसी कुशल माली की जरुरत पड़ती है, ताकि बगीचा हरा–भरा, सुन्दर व समुन्नत बना रहे। मनुष्य का मस्तिष्क एक बगीचा है, इसमें नाना प्रकार के मनोभाव, विचार, संकल्प, इच्छा, वासना एवं योजना रुपी वृक्ष उगते रहते है, जिनमें कुछ आवश्यक व कुछ निरर्थक होते है। कुछ स्वतः उगकर बगीचे को नष्ट करते हैं। एक अच्छा माली झाड़–झंखाड़ उखाड़कर अपनी चतुराई, दूरदर्शिता व वुद्विमत्ता से मस्तिष्क रुपी बगीचे में संस्कार के बीज जमाता रहता है।

मानव जन्म के पश्चात विकास को सार्थक बनाने व गति देने के लिये किसी श्रेष्ठ मार्गदर्शक सत्ता की नितान्त आवश्यकता होती है। जिसके अभाव में प्राणी उद्देश्यविहीन होकर इस संसार रुपी भवसागर में हिचकोलें लेता रहता है। इस तरह वह अपनी जिंदगी के बहुमूल्य पल जिन्हें वह श्रेष्ठ कार्यो को करके प्रभु की प्राप्ति, मान–सम्मान, धन–वैभव प्राप्त करने में लगा सकता था, गुरु के अभाव में व्यर्थ ही गवां देते हैं। इस तरह दीन–हीन बनकर रोते–कलपते मात्र जिंदगी की लाश ढोते रहते हैं। गंतव्य का पता हो तो चलने वाले के पाँव में गति आती है। मन में हर पल उत्साह उमगता रहता है। लक्ष्य का स्वरुप स्पष्ट होने से पथ अर्थवान होता है। राहें गुणवान बनती है। यदि मंजिल का ही पता न हो तो पाँवो की सारी मेहनत भटकन की थकान बनकर रह जायेगी।

जीवन में इस अवसाद व भटकन से बचने का एक ही उपाय है कि, गुरु वरण किया जाये, गुरु दीक्षा ली जाये और हम वैचेनी से गुरु की तलाश में जुट जाते है कि, कोई ऐसा गुरु मिले कि जिनके

स्पर्श मात्र से उनके दुख दूर हो जाये। भगवान भोलेनाथ आध्यात्मिक रहस्यों को उजागर करते हुये भगवती पार्वती से कहते हैं कि, परम पूज्य गुरुदेव की भावमयी मूर्ति ध्यान का मूल है। उनके चरण कमल पूजा के मूल है। उनके द्वारा कहे गये वाक्य मूल मंत्र है, उनकी कृपा ही मोक्ष का मूल है। गुरुदेव आदि व अंत से परे है। यदि भगवान शिव स्वयं रुठ जाये तो कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। अतः सभी प्रकार से गुरु की शरण में जाना चाहिये।

आसपास के वातावरण में ऐसे अनेक लोग मिल जायेंगे जिन्हें गुरु की खोज है, वे बड़ी वैचेनी व वेसब्री से गुरु की खोज करते नजर आते है। लेकिन इस खोज का कारण क्या है, वे यह समझ नहीं पाते। इसके लिये उसे पहले शिष्य बनना होता है। वह यथार्थ में जिज्ञासु होता है और अपनी अनगढ़ प्रकृति को सुगढ़ एवं सुसंस्कृत करना चाहता है। उसका लक्ष्य होता है स्वयं की प्रकृति का परिशोधन व रुपांतरण, जिसके लिये उसे मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

सद्गुरु भी ऐसों की चाहत के पक्केपन व सच्चाई को कई ढंग से परखते हैं। जिस तरह शिष्य गुरु को ढूंढ़ता है, उसी भांति सद्गुरु भी अपने सत्पात्र शिष्य को खोजते हैं। इस प्रक्रिया का चरम तब होता है, जब शिष्य अपने अधूरेपन को, अनगढ़ जीवन को सद्गुरु की पूर्णता में समर्पित करता है व सद्गुरु भी अपनी पूर्णता शिष्य में उड़लते है। यही वे मधुर पल होते है, जिन्हें शिष्य व सद्गुरु की चेतना गुरुपूर्णिमा के अवसर पर समन्वित रुप से मनाती है। इस दिन गुरु चेतना अंतरिक्ष में सघन होकर शिष्यों के अंतस् में बरसती है। सच्चे शिष्य अपने अराध्य की इस वृष्टि को अनुभव करते हैं व कृतकृत्य हो जाते हैं। गुरु की स्मृति मात्र से आँखे छलक उठती है, रोम–रोम पुलकित हो जाता है, भाव भीगने लगते है व चेतना में एक सिहरन की लहर दौड़ पड़ती है। यह सब हो भी क्यों न आज सद्गुरु की पूर्णता का महोत्सव जो है। गुरु आकृति में नहीं, प्रकृति में दिव्य होता है।

गुरु कौन हो व कैंसा हो ? यह प्रश्न अनेक लोगों को झकझोरते रहता है। इसका उत्तर यह है कि, जिस तरह हाई पॉवर बिजली की शक्ति हर कोई सहन नहीं कर सकता ठी उसी तरह परमात्मा की शक्ति हाई पॉवर की है, जिसे हर कोई सहन नहीं कर सकता लेकिन सद्गुरु उस उस परमात्मा की शक्ति को धारण ही नहीं करता वल्कि स्वयं परमात्मा ही होता है, जो देह धारण करके पृथ्वीवासियों का उद्दार करने भूलोक पर अवतरित होता है।

जिस तरह भागीरथ के प्रयास से जब माँ गंगा भगवान विष्णु जी के चरणों से निकलकर पृथ्वी पर आईं तो कोई भी उनका वेग न संभाल सका और वे सीधी पाताल लोक में जाकर लुप्त हो गई। जब सद्गुरु आदि गुरु भगवान शिव से प्रार्थना की गई तब भगवान शंकर ने अपनी जटाओं में माँ गंगा को

धारण किया व आवश्यकतानुसार भूलोक में इस अमृत जल को भेजकर प्राणी मात्र को कृतकृत्य किया। ठीक इसी तरह सद्गुरु परमात्म शक्ति को धारण करता हुआ अपने शिष्यों के जीवन में आने वाले उखाड़–पछाड़ व पात्रता के आधार पर उस शक्ति को देता है। इसलिये कहा गया है :–

गुरु ब्रम्ह्म गुरु विष्णु गुरुदेव महेश्वर :। गुरुः साक्षात परब्रम्ह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

अर्थात् गुरु ब्रम्ह्म के रुप में हमारे मन मस्तिष्क रुपी बगीचे में श्रेष्ठ विचार रुपी बीजों को जन्म देता है। विष्णु के रुप में उसका पालन पोषण करते है, इतना ही नहीं महेश बनकर हमारे अंदर बुराईयों, कुसंस्कार रुपी झाड़–झखाड़ों को नाश कर हमारी रक्षा करते हैं। इस तरह सद्गुरु माता–पिता की तरह हमें संरक्षण देते हैं। ईश्वर तो अति सूक्ष्म तत्व है, जिसे हमने नहीं देखा किन्तु गुरु रुप में वह साक्षात् ईश्वर ही तो है। अतः ऐसे सद्गुरु के प्रति समर्पण तो होना ही चाहिये।

गुरु तो प्रेरणा के स्त्रोत का नाम है। वह संवल होता है, कल्पवृक्ष है। इस शक्ति स्त्रोत के नीचे बैठकर जो शिष्य फलांकाक्षा करता है, वह शिष्य को मिलता है और वह धन्य हो जाता है। क्योंकि जिस सत्ता का उसने हाथ पकड़ा है, उसमें उसकी श्रद्वा है, विश्वास है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है :– **'' भवानी शंकरो बंदे श्रद्वा विश्वास रुपिणों ''** मैं भवानी शंकर की वंदना करता हूँ, लेकिन यहां न भवानी है न शंकर फिर किसकी वंदना कर रहे है। उन्होने कहा कि, श्रद्वा और विश्वास ही भवानी–शंकर है और यही सफलता का सोपान है।

सफलता शिष्य को जरुर मिलती है, जब शिष्य वासुंरी की तरह खाली हो जाये अर्थात् शिष्य की शरीर रुपी वासुंरी वासनाओं, विकारों से खाली हो जाये तब गुरु बाजीगर की तरह शिष्य को नचाता है व शिष्य कठपुतली की तरह नाचता है। बाजीगर के इशारे पर अपने इस समर्पण द्वारा ही शिष्य जीवन के अवसाद उत्सव में बदल देता है, जो शिष्य है वही गुरु की गुरुत्ता पहचान पाता है।

गुरुदेव की चेतना ही इस जड़–चेतन में चर–अचर में संख्याप्त है। ज्ञानशक्ति पर आरुढ़ गुरुदेव प्रसन्न होने पर शिष्यों को भोग एवं मोक्ष दोनो ही वरदान देते हैं। वे अपने ज्ञान व तप के प्रभाव से सहज ही शिष्यों के संचित कर्मो को भस्म कर देते है। गुरु से बढ़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। उनकी सेवा से बढ़कर दूसरा तप नहीं। अतः सभी प्रकार से गुरु की शरण में जाना चाहिये। किन्ही कारणवश यदि गुरु शिष्य की उपेक्षा करें तो वह शिष्य के लिये तो वरदान ही होती है, क्योंकि इसका दूसरा अर्थ है गुरु का ध्यान शिष्य की ओर है जो सदैव कल्याणकारी ही होगा।

गुरु की भूमिका एक ऐसे कुंभकार की होती है व शिष्य कच्ची मिट्टी का ढेला। शिष्य अपना अहं गुरु चरणों में अर्पित करता है। गुरु शक्तिपात द्वारा अपनी अनुकंपा से शिष्य को ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी बनाता है। गुरु मानव चेतना का मर्मज्ञ होता है। वह शिष्य की चेतना में उलट–फेर करने में समर्थ होता है। गुरु जहां अंदर से दुलार–पुचकार व सहारा देता है वहीं बाहर से डाँट–फटकार व प्रहार से भी नहीं चूकता। गुरु का हर प्रहार शिष्य के अहंकार पर होता है और यह भी सत्य है कि, गुरु रुपी कुम्हार हर मिट्टी पर अपना प्रयोग नहीं करता। मात्र उसी मिट्टी पर अपना प्रयोग परीक्षण करता है जो उसके हर प्रहार को आशीष मानकर उसे सहने व स्वीकार करने का साहस रखते है। अंदर से गुरु का ह्रदय प्रेम से लबालब होता है बाहर से उसका व्यवहार कैंसा भी हो।

गुरु ज्ञान की प्रज्जवलित मशाल होते है, वे स्वये में जीवंत शास्त्र है। गुरुवरण का, गुरु से एकत्व की अनुभूति का अर्थ है परमात्मा से एकात्मकता। भौतिक शरीरधारी होने पर भी उसकी आत्मा अज्ञात लोकों में बिचरती है। अतः कहा गया है गुरु चरण चरित के मंत्र दृष्टा महाकति तुलसीदास द्वारा :–

वंदऊ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रुप हरि। महामोह तम पुत्रं जासु वचन रविकर निकर ।।

अर्थात् में सद्गुरु के चरण कमल की वंदना करता हूँ। मेरे गुरुदेव कृपा के सागर और नर रुप में स्वयं नारायण है। उनके वचन महामोह के घने अंधेरे को नष्ट करने के लिये सूर्य किरणों के समूह हैं। तुलसीदास जी ने तो गुरुदेव भगवान के चरण ही नहीं चरणों के धूरि की भी भारी महिमा बताई है।

वंदऊं गुरु पद पद्म परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुराग ।।

सद्गुरु के चरणों से तप तेज झरता है। उनके चरण धूल धारण करने का अर्थ है कि, गुरुदेव द्वारा बताई जीवन नीति का अनुगमन व अनुसरण करना। गुरु चरणों का ध्यान जब ह्रदय में प्रगाढ़ होता है तो ह्रदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं। संसार की महाकालरात्रि विलीन विसर्जित हो जाती है। शिष्य के दुख–दोष भी मिट जाते है और परमात्म तत्व का वोध होने लगता है और जहां जिस जगह मणि–मणिक के रत्न भंडार गुप्त पड़े है। वे सब नजर आने लगते हैं। जीवन की उलझी पहेली सुलझ जाती है। मानव जीवन का रहस्य उजागर हो जाता है।

रामकृष्ण परमहंस कहते है कि, सामान्य गुरु कान फूंकते है जबकि अवतारी पुरुष प्राण फूंकते है। उनका स्पर्श, दृष्टि व कृपा ही पर्याप्त है। ऐसे गुरु जब आते हैं तब विवेकानंद, महर्षि दयानन्द, संत एकनाथ, संत ज्ञानेश्वर, आध्य शंकराचार्य, महाप्रभु चेतन्य जैसी महान आत्मायें जन्म लेकर संस्कृति के उद्दार के लिये नियोजित हो जाती हैं। गुरु शरीर नहीं चेतना पुंज है। भौतिक शरीरधारी होने पर भी उसकी आत्मा उच्च व अज्ञात लोकों में बिचरती है, वे साकार भी है और निराकार भी। देहधारी भी हैं व

देहातीत भी। देह त्याग देने पर उनका अस्तित्व मिटता नहीं वल्कि और अधिक प्रखर हो जाता है। ऐसे सद्गुरु की वंदना किये बिना चैन कहाँ ? आईये हम गुरु का ध्यान करें।

ऊँ ब्रम्हानन्दं परम् सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं। द्वन्दातीतं गगन सदृशं तत्वमस्यादि लक्ष्यम् ।।
एकं नित्यं विमल मचलं सर्वधी साक्षीभूतं। भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरु तै नमामि ।।

एक बार सांसरिक संबंध समाप्त हो सकते है, लेकिन गुरु शिष्य का संबंध जन्म–जन्मातरों तक साथ चलता है।

ऐसे सद्गुरु की प्राप्ति भी विरलों को ही होती है। वस्तुतः गुरु की दिव्य चेतना को धारण करने का अधिकारी मात्र शिष्य होता है। शिष्य वह जो जीवन की सुख–सुविधाओं एवं विषय भोगों की क्षण भंगुरता व रिश्तों का खोखलापन जान चुका है। स्वामी विवेकानंद ने सच्चे शिष्य की चार विशेषतायें बताई है, जिनमें खरा उतरने पर गुरुकृपा की यथार्थ अनुभूति होती है।

1. सद् व असद् का विवेक।
2. ईश्वर प्राप्ति की तीव्र इच्छा।
3. इस लोक व परलोक की सभी कामनाओं का त्याग।
4. गुरु के प्रति अटूट निष्ठा।

ये ही शर्ते शिष्य को गुरु दीक्षा का अधिकारी बनाती है। दीक्षा का मूल अर्थ है **" अपनी इच्छा उन्हें दी "** अपना अहं गुरु को समर्पित किया। इस बात पर परम पूज्य गुरुदेव पंडित श्री राम शर्मा आचार्य जी कहते हैं। **" हम सदा ही अपने मार्गदर्शक की कठपुतली रहे है, उनके इशारे पर चले हैं। "** जब हमने शरीर व मन बेंच दिया है, तो खरीदने वाले की आज्ञा पर चलने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं। यह समर्पण व विसर्जन जैसे–जैसे प्रगाढ़ होता जाता है गुरु शिष्य के बीच आध्यात्मिक स्तर का उच्चस्तरीय आदान–प्रदान चल पड़ता है।

गुरु–शिष्य का संबंध स्थूल व मानसिक नहीं होता, वल्कि आत्मिक संबंध होता है। इसमें शिष्य को बुद्वि नहीं लगाना चाहिये। जब महसूस होने लगे कि, सारी दिशायें अस्त–व्यस्त हो गई हैं। सारी राहें खो गई हैं। भविष्य की कल्पनायें भी नहीं बची। इच्छाओं, आशाओं और सपनों की सारी गतियां समाप्त हो चुकी है, तब समझना चाहिये कि सच्चा शिष्यत्व, खरी पात्रता प्रारंभ हो चुकी है। इस समय सद्गुरु मिले बिना नहीं रहेंगे। शिष्यत्व अर्जित किये बिना यदि सद्गुरु मिल भी गये तो कोई फायदा होने वाला नहीं है। इतिहास साक्षी है कि, भगवान से वरदान पाकर भी राक्षस कोई विशेष लाभ न उठा सके वल्कि उनके तप की अंतिम परिणति क्लेश का स्त्रोत ही साबित हुई। रावण, कुंभकरण, हिरणकश्यप इसके ज्वलंत प्रमाण है। अहंकार की दीवार के ढहते ही शिष्य दिव्य सत्ता से जुड़ जाता है।

शिष्यत्व का अर्थ है, एक गहन विनम्रता। शिष्य वही है, जो अपने को झुकाकर हृदय को पात्र बना लेता है। जब देह की जगह आत्मा की प्यास जगे तब समझना चाहिये कि, सच्चा शिष्यत्व जागा। जैंसा कि मीरा का शिष्यत्व जागा था, कबीर व संत रैदास का जागा था।

गुरु गोविंद से भी बड़ा है। वह जीवात्मा को परमात्मा से मिलाता है। हमें बुद्वि व शिक्षा तो मिल सकती है, किन्तु श्रद्वा नहीं।

गुरु गोविंद दोनो खड़े काके लागू पांय। वलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो मिलाय ।।

भटके हुये हमारे कदमों को गुरु ही हर पग पर संभालता है। वह हमारी मानसिक वेदना को हरता है। शांति देता है, चाहे स्वयं पर कितने ही कष्ट क्यों न आयें। गुरु होता है, द्रोणाचार्य जैसा जिसने अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धर्नुधर बनाया, एकलव्य बनाया। चाणक्य ने हाथ रखा अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के ऊपर तो उसको चक्रवर्ती बना दिया। समर्थ गुरु रामदास ने एक नाटे–बोने लड़के को कहा जा बेटा हमारा आर्शीवाद है, तू विजयी हो। शिवा नाम था उसका जिसने अपने को समर्पित किया था और वो छत्रपति शिवाजी हो गये।

सम्राट अशोक ने तो अपना पूरा परिवार ही भगवान बुद्व के चरणों में समर्पित कर दिया। बौद्व धर्म में संघामित्र व महेन्द्र इतिहास में जाने–माने नाम है। दूसरी ओर शबरी की सारी जिंदगी लग गई झाड़ू लगाते–लगाते। वेचारी अज्ञानी–अनपढ़ थी लेकिन श्रद्वा थी कि, मुझे भगवान का काम करना चाहिये। उसकी इसी श्रद्वा ने उसे परमात्मा भगवान श्री राम से मिला दिया। वरदान स्वरुप नवधा भक्ति पाई, उसका नाम इतिहास में अमर हो गया।

गुरु होते है विश्वमित्र की तरह। जब राम–लक्ष्मण उनके हवाले हो गये तो उन्होने कहा आप यज्ञ कीजिये देखे कौन राक्षस आता है, तब विश्वामित्र ने कहा बेटे तुममें इतना साहस है, तब राम–लक्ष्मण ने कहा श्रद्वा व भक्ति ये दो चीजें हमारी है और शक्ति आपकी है, प्रेरणा व मार्गदर्शन आपका है। तब बला व अतिबला दोनो विधायें उन्होने रामलक्ष्मण को सिखा दी।

वस्तुतः गुरु ज्ञान सम्पन्न आध्यात्मिक समर्थता लिये हुये अलौकिक व्यक्ति होता है। गुरु एक जलती मशाल की तरह हैं। उसे शरीर में विद्यमान चलता–फिरता भगवान कहें तो अतिश्योक्ति न होगी वल्कि वह भगवान से कुछ अधिक ही होता है। भगवान तो सूक्ष्म सत्ता है जो हमें बहुत दूर मालूम पड़ती है किन्तु गुरु प्रत्यक्ष है, जो हमें दूर को प्राप्त करने की संभावनायें देता है। ठीक ही कहा गया है गुरु एक झरोखा है, जिससे दूरस्थ परमात्म रुपी आकाश को हम निहार सकते है।

वे अत्यंत सौभाग्यशाली है, जिन्होने ऐसे गुरु के दर्शन किये। लेकिन वे परमसौभाग्यशाली है, जिन्होने दर्शन के साथ अपनी चेतना को उनकी परचेतना से जोड़ने का सत्प्रयास किया। समर्पण होने पर सद्गुरु सर्वप्रथम शिष्य का लक्ष्य स्पष्ट करते है। वे बताते हैं, तुम्हारा मकसद क्या है ? मंजिल क्या है ?

गुरु शिष्य को दिशावोध कराता है। इस ओर कदम बढ़ाने पर यदि शिष्य के मार्ग में वाधायें आती है, तो वह आने वाली वाधाओं को दूर करते हैं, अपनी शक्ति देते हैं, गुरु शिष्य को मनः स्थिति प्रदान करते है। कर्म तो स्वयं को करना पड़ता है। जिस तरह गीता में महाभारत के युद्व के मैदान में भगवान श्री कृष्ण ने किया। युद्व भूमि में सगे–संबंधियों को देखकर अर्जुन जब मोह में फँसकर अकर्तव्य की ओर बढ़ने लगा तब कृष्ण ने अर्जुन को वह दृष्टि दी, जिसे पाकर वह धन्य हो गया। उसकी कीर्ति अमर हो गई और उसने वह धर्मयुद्व लड़ा ही नहीं जीता भी।

गुरु जब शिष्य पर अनुग्रह करते हैं तो क्या होता है ? इसे एक उदाहरण से समझते हैं। मानलो तुम जिस घर में रहते हो, उसमें बिजली तो है, पर उसके स्विच का तुम्हें पता नहीं। एकदम घनघोर अँधेरा वहां छाया रहता है और तुम्हें बंधा रहना है, तो क्या स्थिति होगी ? बस जैसे–तैंसे टटोलकर काम चलाना पड़ेगा। कई बार ठोकरें लगेंगी। यह भी हो सकता है कि, सिर फूटे व पैर टूटें। इस अँधेरे में न जाने क्या–क्या मुसीबतें उठानी पड़ेंगी।

अब यदि किसी प्रयास या गुरुकृपा से बिजली का स्विच मिल जाये और साथ ही ऑन भी हो जाये तो घर के कोने–कोने में रोशनी बिखर जायेगी। उजियारा फैल जायेगा। एक पल में सारी परेशानियां हल हो जायेंगी और सब कुछ साफ नजर आयेगा। बस सद्गुरु इसी तरह शिष्य पर अनुग्रह करते हैं। यदि हम पहाड़ पर खड़े हैं व हमारे दोनो ओर खाई है, तो हमारी श्रद्वा सद्गुरु के प्रति अगाघ होगी तो वे अपने दोनो हाथ बढ़ा देंगे या आपको उड़ना सिखा देंगे।

इस तरह सद्गुरु का वरण, उनका ध्यान, पूजन अर्चन हमारे जीवन में खुशियों के अंवार लगा देगा। ऐसे सद्गुरु की उपेक्षा, तिरस्कार भी हमारे सिरमाथे है, क्योंकि उसकी दृष्टि हम पर है। सच्चे शिष्यत्व को सद्गुरु के आर्शीवचन :–

हमारे स्नेह के निर्मल सरोवर से जुड़ा जय। नहीं कुम्हला सका, ऐसा अरुण जलजात कोई ।।
हृदय की वेदना हमसे तुम्हारी छिप न पाई। रही क्या अनकही हमसे तुम्हारी बात कोई परम पूज्य गुरुदेव।।
ऐसे सद्गुरु चरण में कोटि–कोटि प्रणाम।

डॉ. श्रीमति कुसुम गुप्ता,
21, गायत्री नगर, ग्वालियर

♦♦♦♦♦♦♦♦